CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

V. B. T.

शांडिल्य कृत भक्ति-सूत्र

स्वामी अखण्डानन्द

य-ग्रन्थालय
,करौंदी, वाराणसी-५
12

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

V. B - 7.

शांडिल्य कृत भक्ति-सूत्र

[सरल भावानुवाद]

★

आम्नाय-ग्रन्थालय,
प्रतिनिधि, करौंदा
वाराणसी-5

लेखक
स्वामी जपानन्द

ॐ

"एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति"

★

प्रकाशक
श्रीरामकृष्ण कुटीर
बीकानेर (राजस्थान)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकाशक
के० एस० राजगोपाल
अध्यक्ष—श्रीरामकृष्ण कुटीर
बीकानेर

[सर्वाधिकार स्वरक्षित]

जून १९५८
प्रथम आवृत्ति १०००
मूल्य छः आना

मुद्रक
एजूकेशनल प्रेस
बीकानेर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आम्नाय-ग्रन्थालय,
[illegible]

प्रस्तावना

वाराणसी-5

श्रीनारद भक्ति-सूत्रमें भक्तिका स्वरूप, उसकी प्राप्तिके उपाय, भक्तका लक्षण वगैरह सुन्दर सरल भाषामें लिखे गये हैं जो भक्ति साधकोंके पास अत्यधिक समादृत है। इस शांडिल्य भक्ति-सूत्रमें भी उसी रीतिसे सूत्राकार भाषामें भक्ति-विषयक विचार प्रदर्शन किया गया है, जिसका ख़ास प्रचार नहीं पाया जाता। यह भी श्रीनारद भक्ति-सूत्र जैसा ही साधकोंके लिए उपयोगी होनेसे हमने इसकी व्याख्या समन्वय दृष्टिसे करनेकी कोशिश की है, जो स्वयं महर्षिजीका उद्देश था— ऐसा हम समझते हैं। आशा है कि—इस सरल भावानुवादसे भक्ति साधक यथोचित लाभ उठायेंगे! इति—

—लेखक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ॐ

शांडिल्य कृत भक्ति-सूत्र

प्रथम अध्याय

आन्हिक—एक

—०—

ॐ अथातो भक्तिजिज्ञासा ॥ १ ॥

अब जबकि सांसारिक सुख-उपभोगमें अरुचि उत्पन्न हुई है, अन्तरमें शाश्वत-शांतिके मार्गके लिए जिज्ञासा समुत्पन्न हुई है, धर्मपालनमें मति स्थिर होती चली है, शास्त्र व संत पुरुषोंमें श्रद्धा बैठ रही है, तब भक्ति लाभके उपायके बारेमें जिज्ञासा तथा उसके सच्चे स्वरूपकी आलोचना करनेका समय आ गया है,—ऐसा समझना चाहिये ॥

सा परानुक्तिरीश्वरे ॥ २ ॥

ईश्वरमें परम अनुरक्तिका नाम है भक्ति ॥ विषयमें

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विरागके साथ ही साथ जब ईश्वरमें परम अनुरागका उदय होता है, तब भक्ति हुई है समझना ॥

तत्संस्थस्यामृतत्वोपदेशात् ॥ ३ ॥

उसमें (भगवानमें) संलग्न चित्तवालेको अमृतत्वकी प्राप्ति होती है, (ब्रह्म संस्थोमृतत्वमेति) ऐसा उपदेश है करके—भक्तिका अर्थ है ईश्वरमें अनुराग ।

श्री नारदजीने भक्तिका स्वरूप—"अमृत स्वरूपा" बतलाया है (ना० भ० सू० = ३) ॥

ज्ञानमिति चेन्न द्विषतोऽपि ज्ञानस्य तदसंस्थितेः ॥ ४ ॥

अगर कहो कि—भागवतीय ज्ञान ही (भक्ति है), सो नहीं, कारण भगवद्विद्वेषी भी ज्ञानका (अधिकारी है), और उसमें (ईश्वरमें) अनुराग होता नहीं है । ईश्वर है और सृष्टि-स्थिति इत्यादि का कर्ता है—ऐसा जानने पर भी कुछ भक्ति या अनुराग उनके प्रति नहीं होता है । राक्षस, दैत्य भी इस प्रकार ज्ञानवान थे, परन्तु वे भगवद्विद्वेषी थे ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तयोपक्षयाच्च ॥ ५ ॥

और यह भी है कि—भक्तिका पूर्ण विकास होनेसे उस प्रकार ज्ञानका उपक्षय हुआ करता है ॥

भक्ति जैसा ज्ञान भी मुक्तिका हेतु है, अतः दोनों ही प्रधान है—ऐसा कहो तो कहना है कि,—प्रेम-भक्तिका उदय होनेसे ईश्वर सम्बन्धीय परोक्ष ज्ञानका अभावसा हुआ करता है, इतनी तल्लीनता हुआ करती है, अतः इसमें उक्त ज्ञान गौण हो जाता है ॥

द्वेषप्रतिपक्षभावाद् रसशब्दाच्च रागः ॥ ६ ॥

जिसमें द्वेषका विरोध है और रस शब्दके द्वारा जिसका प्रतिपादन किया जाता है (ऐसा जो भक्ति भाव है) सो है अनुराग ॥

द्वेष और राग—ये परस्पर विरोधी हैं। "रसो वै सः रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति," (तैतिरीय उ०)—इस प्रकारकी उक्तियाँ उपनिषदोंमें पायी जाती हैं, जिससे श्रीभगवान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रसस्वरूप हैं और इस रसबोधके द्वारा जो अनुराग समुत्पन्न हुआ करता है, उससे साधक आनन्दमय होता है, ऐसा निर्देश पाया जाता है।

न क्रिया कृत्यनपेक्षणाज्ज्ञानवत् ॥ ७ ॥

भक्ति क्रियात्मिका नहीं है, क्योंकि ज्ञानके जैसी यह कृतिकी अपेक्षा नहीं रखती है ॥

अभ्यासके द्वारा साधकगण ज्ञानादि अर्जन करते हैं, पर भक्तिकी स्फूरणा स्वयमेव हुआ करती है,—किसी क्रिया या कोई अभ्यासादिके वश यह नहीं है, अर्थात्—भक्ति 'समुत्पाद्या' नहीं है।

अतएव फलानन्त्यम् ॥ ८ ॥

इसलिए (भक्तिके) फलका आनन्त्यत्व निर्देश करते हैं। जो कुछ प्रयत्न-साध्य हुआ करता है, उसका फल सान्त—सीमित होता है, अनन्त नहीं ; भक्ति समुत्पाद्य न होनेसे—अर्थात् स्वतः सिद्ध होनेसे फलमें आनन्त्यत्व स्वाभाविक है ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तद्वतः प्रपत्तिशब्दाच्च न ज्ञानमितरप्रपत्तिवत् ॥ ९ ॥

ब्रह्म-भावापन्न ज्ञानीके लिए भी शास्त्रमें प्रपत्ति या शरणागतिकी बात है। जैसाकि अज्ञानीजन किया करते हैं, उस प्रकार ज्ञानी नहीं करते : अज्ञानी अन्य देवताओंकी शरणागति स्वीकार करते हैं, पर ज्ञानी तो एक परमेश्वरकी ही शरणागति स्वीकारते हैं।

इति अध्याय—१ ॥ आन्हिक—१ ॥

प्रथम अध्याय

आन्हिक—दो

—०—

सा मुख्येतरापेक्षितत्वात् ॥ १० ॥

भक्ति मुख्या है, क्योंकि—अन्य योगादि में भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसकी अपेक्षा रहती है ॥

भगवत्कृपाकी अपेक्षा ज्ञानीको भी रहती है ।

प्रकरणाच्च ॥ ११ ॥

श्रुतिमें वैसा प्रकरण भी है ॥

आत्मरति, आत्मक्रीड़ इत्यादि शब्द भक्ति-भावका मुख्यत्व प्रतिपादन करता है (छान्दोग्य)।

दर्शनफलमिति चेन्न तेन व्यवधानात् ॥ १२ ॥

दर्शनका फल कहो तो सो नहीं, कारण उसमें शब्दका बड़ा भेद है ॥

स वा एष एवं पश्यन्नेवं मन्वान एवं विजानन्नात्म-रतिरात्मक्रीड़ आत्ममिथुन आत्मानन्दः स स्वराड् भवतीति (छान्दोग्य)।

वह देखकर, मननकर, जानकर फिर आगे जाकर आत्मरति आत्मक्रीड़ बनते हैं और आत्ममिथुन होकर आत्मानन्दका लाभ करते हुए स्वराज्य सिद्धि या मुक्ति प्राप्त होते हैं। इससे प्रमाणित हुआ कि—ज्ञानक्रिया के बाद ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रति या रस उत्पन्न होता है, और रसबोधसे परमात्माके साथ युक्त होकर मिथुनकी तरह एकात्मता होती है, जिससे आनन्द स्वरूपका अनुभव हुआ करता है, अनन्तर स्वराज्य-सिद्धि या मुक्ति होती है ॥

दृष्टत्वाच्च ॥ १३ ॥

वैसा ही देखनेमें आता है ॥

अर्थात् दर्शन-ज्ञानका फलरूप प्रीति है:—दर्शनादिके बाद ही अन्तरमें प्रीतिका संचार हुआ करता है।

अतएव तदभावाद्गोपीनाम् ॥ १४ ॥

अतएव उसका अभाव होने पर भी गोपियों की सर्वोत्तम गति हुई थी ॥

शास्त्रीय बोधजन्य ज्ञानका अभाव होने पर भी भगवान् श्रीकृष्ण पर गोपियोंका अनुपम प्रेम या उनकी प्रीति ही इसका अत्युत्कृष्ट दृष्टान्त है। इस प्रेमके ही कारण वे अत्युत्तम गति प्राप्त कर पायीं थी। साक्षात् दर्शनजन्य यह प्रेम था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भक्त्या जानातीति चेन्नाभिज्ञप्तया साहाय्यात्* ॥ १५ ॥

भक्तिके द्वारा ही जानता है, ऐसा कहो तो सो ठीक नहीं है, कारण कि—अभिज्ञप्ति इसमें मदद किया करती है ॥

ईश्वराभिज्ञानके बाद ही भक्ति या प्रेमका उदय होता है। साक्षात् ज्ञानके अनंतर ही प्रीति हो सकती है, तत्व-ज्ञान इसमें मददरूप हुआ करता है ॥

प्रागुक्तंच ॥ १६ ॥

पूर्वमें कहा भी गया है ॥

पूर्वमें इसकी आलोचना की गई है, और गीतादिमें ऐसी उक्तियां भी पाई जाती हैं:—ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति। समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥ (१८/५४)

एतेन विकल्पोऽपि प्रत्युक्तः ॥ १७ ॥

इसके द्वारा विकल्पका भी प्रत्युत्तर दिया गया ॥

---

*पाठांतरमें—साहचर्यात्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गीताकी उक्ति द्वारा यह सिद्ध हुआ कि—ज्ञानक्रिया है भक्ति लाभका उपाय या साधन। ज्ञान या भक्ति श्रेष्ठ है, ऐसा वितर्कका स्थान है ही नहीं॥

देवभक्तिरितरस्मिन् साहचर्यात् ॥ १८ ॥

देव-भक्ति इससे (पराभक्तिसे) भिन्न है, पर उसे भी भक्ति कही जाती है—भक्ति-भावके साहचर्यके कारण॥

प्राकृत-आनन्द जैसे ब्रह्मानन्दसे भिन्न है, परंतु मूल ब्रह्मानन्दकी ही सूक्ष्म स्फूर्ति उसमें है करके आनन्द शब्दका प्रयोग किया जाता है। अतः पराभक्ति—गुरुभक्ति या अन्य देवादिके प्रति भक्तिसे भिन्न है॥

योगस्तूभयार्थमपेक्षणात् प्रयाजवत् ॥ १९ ॥

योग उभयार्थक है—भक्ति व ज्ञान दोनोंमें ही इसकी अपेक्षा है करके, जैसा कि—'प्रयाज' याग। (यह बाजपेय यज्ञका अंग है और तदंगीय दीक्षणीय यागका भी।) चित्त संयमादि रूप योग तो ज्ञान व भक्ति—दोनोंमें ही आवश्यक है॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गौण्या तु समाधिसिद्धिः ॥ २० ॥

चित्तकी एकाग्रतारूप समाधि-सिद्धि गौणी है, (जो ईश्वर-प्रणिधान द्वारा हुआ करती है)॥

कोई ऐसा अर्थ भी करते हैं कि,—गौणी भक्ति द्वारा ही समाधि-सिद्धि हुआ करती है, जिसको योग शास्त्रमें इतनी महत्ता दी गई है।

हेया रागत्वादिति चेन्नोत्तमास्पदत्वात् संगवत् ॥ २१ ॥

रागात्मक होनेसे हेय (त्याज्य) है अगर ऐसा कहो तो सो नहीं, कारण यह उत्तमास्पदोंके (सत्पात्रोंके) साथ संग करना जैसा है॥

भक्तिमें राग या आसक्ति है करके अगर इसे हेय कहो—(कारण, आसक्ति दुःखका हेतु होनेसे वर्जनीय है) तो ठीक नहीं, कारण यह सत्संग जैसा इष्ट या शुभ फलप्रद है। संगको दोषणीय माना गया है, पर सत्संग को वांछनीय कहा गया है। उसी प्रकार भक्तिमें यह राग या अनुराग काम्य है॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तदेव कर्मिज्ञानीयोगिभ्य आधिक्य शब्दात् ॥ २२ ॥

यही कारण है कि—कर्मी-ज्ञानी-योगियोंसे भी भक्त अधिक याने श्रेष्ठ है—गीतादि शास्त्र प्रमाणसे। (गीता अ० ६/४६-४७) ॥

प्रश्ननिरूपणाभ्यामाधिक्य सिद्धेः ॥ २३ ॥

प्रश्न और उसके निरूपण या समाधान द्वारा भक्तिका आधिक्य अर्थात् उसकी श्रेष्ठता प्रतिपादन की गयी है। (गीता अ० १२/२-८) ॥

नैव श्रद्धा तु साधारण्यात् ॥ २४ ॥

इसे श्रद्धा नहीं कही जा सकती, क्योंकि यह सामान्य शब्द है ॥

शास्त्रमें—कर्ममें—अनुष्ठान विशेष इत्यादिमें श्रद्धा शब्दका प्रयोग किया जाता है, पर भक्ति तो भगवानकी ही की जाती है ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तस्यां तत्त्वे चानवस्थानात् ॥ २५ ॥

अनवस्था दोष होने से तात्त्विक-दृष्टिसे भी उसकी भिन्नता मानी गई है। श्रद्धावान होवे तो भक्तिमान भी—ऐसी कोई बात नहीं है। कर्म विशेष या देव पूजा वगैरह में श्रद्धा हो तो उसे भक्ति नहीं कही जा सकती। इसलिए श्रद्धा व भक्ति अलग अलग कही जाती है॥

ब्रह्मकाण्डं तु भक्त्यै तस्यानुज्ञानाय सामर्थ्यात् ॥ २६ ॥

वेदका ब्रह्मकाण्ड या ज्ञानकाण्ड भी भक्तिके लिए है; कारण उसका (ब्रह्मका) ज्ञान या बोध उत्पन्न करनेमें भक्तिमें सामर्थ्य है।

इति अध्याय—१ ॥ आन्हिक—२ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्वितीय अध्याय

आन्हिक—एक

—०—

बुद्धिहेतुप्रवृत्तिराविशुद्धेरवघातवत् ॥ २७ ॥*

जैसे धान्यको तवतक कूटा या खड़ा जाता है, जबतक साफ तंदुल न निकले, वैसे ही बुद्धिकी प्रवृत्ति अर्थात् श्रवण-मननादि चलता है उसकी आविशुद्धि या पूर्ण शुद्धिके लिए ॥

भक्तिके लिए चाहिये—शुद्धबुद्धि, ज्ञानके लिए भी। श्रवण-मनन या ब्रह्म-विचार मानिये कि उद्खल (या उखल) में धान कूटना जैसा है। साफ तंदुल निकल आनेपर कूटना बंद किया जाता है, वैसे ही बुद्धि या चित्त निर्मल होनेके बाद फिर विचारादिकी आवश्यकता नहीं रहती ॥

तदंगानांच ॥ २८ ॥

उसी प्रकार समस्त अंगोकी शुद्धिकी आवश्यकता है ॥

---

*बुद्धिहेतुप्रपत्तिः...॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देहेन्द्रियकी शुद्धि भी भक्तिसाधनमें आवश्यक है। कोई कोई ऐसा भी अर्थ घटाते हैं—गुरुसेवा, ब्रह्मचर्य, आहिंसा, वैराग्यादि भक्ति-साधनाके अंगोकी भी सयत्न शुद्ध-भावसे आचरणकी आवश्यकता है ॥

तामैश्वर्यपरां काश्यपः परत्वात् ॥ २९ ॥

काश्यपाचार्यने इसे (बुद्धिको) "ऐश्वर्यपरा" कहा है, क्योंकि यह पर याने भिन्न है ईश्वरसे ॥

काश्यपाचार्यने जीव और ईश्वरको संपूर्ण भिन्न बताया है। अतः बुद्धिको ईश्वर परायण ही रखनी चाहिए। ईश्वर षड्ऐश्वर्ययुक्त है ॥

आत्मैकपरां बादरायणः ॥ ३० ॥

बादरायण व्यासने बुद्धिको—"आत्मैकपरा" कहा है ॥

आत्मसाक्षात्कार अथवा तो ब्रह्मात्मैक्य बोध ही वेदान्तका सार उपदेश है, अतः बुद्धि है आत्मपरायण ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आत्मानन्द ग्रन्थालय
भरतनिधि, करौंदा
वाराणसी-५

उभयपरां शांडिल्यः शब्दोपपत्तिभ्याम् ॥ ३१ ॥

शांडिल्यके मतमें—बुद्धि "उभयपरा" है, शास्त्र और युक्ति-विचारसे यह सिद्ध है।

बुद्धि—ऐश्वर्यपरा और आत्मैकपरा भी। अशुद्ध या मलिन बुद्धिमें तो जीवत्वका लक्षण विवक्षित है, और गीतामें भी—(ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः (१५/७)—जीव व ईश्वरमें भिन्नताका स्पष्ट निर्देश है। उधर उपनिषद्में—सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानीति शान्त उपासीत। (छान्दोग्य)—यह सर्व ब्रह्म है ऐसा जानकर समाहित चित्त होकर शान्त वृत्तिवाले पुरुष उपासना करें! इसप्रकार उक्तिसे यह सूचित है कि—पुरुष ब्रह्मात्मामें एकताका अनुभव करता हुआ जबतक शान्त-वृत्तिवाला न हो तबतक ब्रह्म-आत्मामें भिन्नताकी प्रतीति रहती है, अतः उपासनाकी भी आवश्यकता रहती है। जीव-भाव तब जाता है जबकि अपनी आत्माको पुरुष ब्रह्मस्वरूपमें एकीभूत करके तल्लीन हो तद्रूप हो जाता है। केवल बुद्धिमें ही यह प्रतीति हुआ करती है, इसलिए बुद्धि उभयपरा है याने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दोनों भावोंके ही अनुभव किया करती है।

वैषम्यादसिद्धमिति चेन्नाभिज्ञानवदवैशिष्ट्यात्॥ ३२॥*

वैषम्य होनेसे (ब्रह्मके साथ अभेदभावका बोध) सिद्ध नहीं हो सकता, अगर ऐसा कहो तो सो नहीं, कारण अभिज्ञानवत् इसमें कुछ वैशिष्ट्य नहीं है॥

अवस्था या कालकी भिन्नता—जिस प्रकार किसीके व्यक्तित्वके बोधमें फर्क नहीं डाल सकती : 'मैं बालक था, अब वृद्ध हुआ हूँ'—यह "मैं" का अभिज्ञान समान रहता है, उसी प्रकार जीव व ईश्वरमें जो भेद या वैषम्य—एक अल्पज्ञ जन्म-मृत्युके आधीन, और दूसरा सर्वज्ञ, अज, अमृत, स्वतंत्र—इसके बोधके साथ चैतन्य सत्ताकी अभिन्नताका बोध भी समान रहता है॥ अथवा कहिये,—गुण-गुणी स्वरूपतः अभेद ही है अविशिष्ट होनेसे,—इस सिद्धांत अनुसार चेतनतामें साम्यके अभिज्ञानमें फर्क नहीं पड़ता॥

---

*चेन्न प्रत्यभिज्ञानवदिति...

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न च क्लिष्टः परः स्यादनन्तरं विशेषात् ॥ ३३ ॥

परमात्मा (वैषम्य दोष द्वारा) क्लिष्ट नहीं होते हैं। जीव व ईश्वरमें भेदका ज्ञान होनेके पश्चात्, जीवका यह बोध अधिक होता है ॥

अर्थात् परमात्मा सर्व दुःख-क्लेशादिसे मुक्त हैं, और जीव दुःख क्लेशादि द्वारा क्लिष्ट है—इस स्वभावगत भिन्नताका बोध विशेष होता है ॥ चिदंशमें अभेद होने पर भी क्लेश भोग जीवात्माको ही हुआ करता है,—ईश्वर अस्पृष्ट रहते हैं—इसका ऐसा अर्थ भी किया जाता है:—संसारी जीव क्लिष्ट होता है, अतः ईश्वरके साथ अभेद नहीं हो सकता, उनकी कृपासे ही कुछ "योग्यता" प्राप्त होती है ॥

ऐश्वर्यं तथेति चेत् स्वाभाव्यात् ॥ ३४ ॥

ऐश्वर्यमें भी फर्क है—(ईश्वरमें वह) स्वाभाविक होनेसे ॥

ईश्वरमें ज्ञान-शक्ति-बल-वीर्य-यश-श्री आदि ऐश्वर्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वाभाविक है, जीवमें इसकी नून्यता तो है ही बल्कि—अभाव भी है ॥

अप्रतिषिद्धं परैश्वर्यं तद्भावाच्च नैवमितरेषाम् ॥ ३५ ॥

परमेश्वरके ऐश्वर्यकी "इति" नहीं की जा सकती, कारण वे उसी स्वभावविशिष्ट हैं, पर अन्य या जीवके बारेमें वैसा नहीं ॥

सर्वैश्वर्य स्वाभाविक है ईश्वरमें, जबकि जीवमें सो नहीं : जीव प्रयत्न पूर्वक कुछ प्राप्त कर पाते हैं अथवा तो ईश्वर कृपया प्राप्त हुआ करता है, ऐश्वरीय भाव जीवमें स्वभावसिद्ध नहीं है ॥

सर्वानृते किमिति चेनैवम्बुद्ध्यानन्त्यात् ॥ ३६ ॥

सब मिथ्याकर छोड़ देनेसे फिर क्या काम है (ऐश्वर्यसे) ?—ऐसा कहो तो, सो नहीं, कारण बुद्धिमें अनन्त भेद है ॥

सब त्याग करनेवाला तो विरल ही होता है, ऐश्वर्यमें

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आसक्तचित्त अधिक होते हैं। मुक्ति ऐश्वर्यासक्तको नहीं होती। आसक्त-चित्त वद्ध-जीवके लिए मिथ्या समझकर सर्वत्याग असंभव ॥

प्रकृत्यन्तरालादवैकार्यं चित्सत्वेनानुवर्तमानात् ॥ ३७ ॥

प्रकृतिके अन्तरालमें रहनेसे और चित्सत्वासे सबमें अनुवर्तमान रहनेसे (ईश्वरकी) अविकार्यता सिद्ध होती है ॥

उत्पत्ति, स्थिति, वृद्धि, क्षयादि विकारी पदार्थका धर्म ईश्वरमें नहीं है, वे नित्य निर्विकार हैं;—प्रकृतिके अन्तरालमें चित्-सत्वाके रूपमें अनुवर्तमान रहकर सृष्टि-प्रभृति कार्यमें प्रकृतिको प्रेरणा दिया करते हैं ॥

मूलरूपमें जीव भी अविकारी है, मायावद्ध है, माया-बद्ध होनेसे विकारयुक्त प्रतीत होता है,—यह सर्वमान्य सिद्धांत है ॥

तत् प्रतिष्ठा गृहपीठवत् ॥ ३८ ॥

उनकी प्रतिष्ठा है गृहपीठ जैसी ॥ तस्मिन् सर्वं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रतिष्ठितम्। घरकी स्थिति पीठ मुवाफिक सृष्टिमें उनकी प्रतिष्ठा है॥

मिथोहपेक्षणादुभयम् ॥ ३९ ॥

मिथुनकी अपेक्षा है (सृष्टि कार्यमें) इसलिए (प्रकृति-पुरुष) दोनों ही (परस्परकी अपेक्षा रखते हैं)॥

चित्सत्वा बिना प्रकृति सृष्ट्यादि कार्यमें असमर्था है, स्वयं जड़रूपा होनेसे। इसलिए दोनों ही को सृष्ट्यादि कार्यमें कारणरूप माना गया है॥

चेत्यचितोर्न तृतीयम् ॥ ४० ॥

प्रकृति और चित्—चैतन्य, इन दो के सिवाय और अन्य तीसरा कारण नहीं है॥

ब्रह्म—चैतन्य और उनकी माया-शक्ति कहिये प्रकृति, ये दो ही हैं सृष्टिका कारण। चित्-सत्त्वके आश्रय और प्रेरणासे ही प्रकृति सृष्टिकार्य करनेमें समर्था होती है॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

युक्तौ च सम्परीयात् ॥ ४१ ॥

स्वरूपतः दोनों एक अभिन्न होनेसे भी "कारण" वे ही हैं, (तृतीय कोई नहीं) ॥

शक्ति व शक्तिमान जैसे अभिन्न है, वैसे ही माया-शक्ति व ब्रह्म अभिन्न है ॥

कोई इस प्रकार अर्थ भी करते हैं:—प्रकृति व पुरुष दोनों परस्पर विरोधी (जड़+चेतन) स्वभावविशिष्ट होने पर भी सृष्ट्यादि कार्यमें संयुक्त पाये जाते हैं—जिससे प्रकृतिमें चेतनता आ जाती है—पुरुषके साथ अभिन्न हो रहती है अतः तृतीय कोई भी कारणका अभाव है ।

शक्तित्वान्नानृतं वेद्यम् ॥ ४२ ॥

शक्ति होनेसे अनृत करके नहीं समझना चाहिये ॥

ब्रह्म या परमेश्वरकी "शक्ति" होनेसे प्रकृति मिथ्या नहीं हो सकती। असत्से सत्की उत्पत्ति नहीं हो सकती, वैसे ही सत्से असत्की, अतः नित्य सत्य ब्रह्मकी माया-शक्ति भी सत्य है,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और जो मायिक कार्य (सृष्टि वगैरह) है, सो परिवर्तनशील होने पर मिथ्या शब्द के द्वारा निर्देश किया जाता है; "तीनकालमें है ही नहीं," यह सच नहीं है । जाग्रत अवस्थामें जो प्रतीति होती है, सो स्वप्न या सुषुप्तिमें है नहीं करके असत्य है, यह विचार शांडिल्यजीको ग्राह्य नहीं है। मानसिक अवस्था विशेषमें जैसी वस्तुकी अभिज्ञप्ति या प्रकाशमें भिन्नता हुआ करती है, वैसे ही स्वप्नादिक अवस्थामें वस्तु-स्थितिका जो अनुभव हुआ करता है, सो जाग्रतकालीन अवस्थामें अप्रतीत रहता है, या तो परिवर्तित रूपमें पाया जाता है। (कोई कोई स्वप्न तो 'जैसा देखा', जाग्रतकालमें भी वैसा ही सिद्ध हुआ करता है !) अतः संपूर्ण असत्य नहीं है यह माया-शक्तिका कार्य जगत् ॥

तत्परिशुद्धिश्च गम्या लोकवल्लिंगेभ्यः ॥ ४३ ॥

उसकी परिशुद्धि—लौकिक चिन्हके द्वारा जानी जा सकती है ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अब फिर भक्ति-तत्वकी आलोचना करते हैं:—शुद्धा भक्तिका उदय लौकिक चिन्हके द्वारा प्रकट हुआ करता है: जैसेकि-गद्गद् स्वर, अश्रू, रोमांच, भावावेग इत्यादि प्रत्यक्ष होते हैं ॥

सम्मान-बहुमान-प्रीति-विरहेतर विचिकित्सा-महिमख्याति-तदर्थप्राणस्थान-तदीयता-सर्वतद्भावा-प्रातिकूल्यादीनि च स्मरणेभ्यो बाहुल्यात् ॥ ४४ ॥

श्रीभगवानके प्रति सम्मानका प्रदर्शन, हरेक प्रसंगमें उनके प्रति जप-आदि शब्दोच्चारण द्वारा बहुमान प्रदर्शन, प्रेम-प्रीति-विरह वेदना अनुभव, इतरविचिकित्सा—ईश्वरभिन्न अन्य सभीकी अनपेक्षा, महिमा कीर्तन, तदर्थ प्राणधारण, तदीयता अर्थात्—स्वयं सर्वतोभावसे उन्हींका है ऐसी धारणा (बलिराजा), सबमें तद्भाव उनकी विद्यमानताका अनुभव (प्रह्लाद), अप्रातिकूल्य—उनकी इच्छा समझकर सर्वावस्थामें अनुकूलताकी दृष्टि रखकर वर्तना (धर्मराज युधिष्ठिर)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इत्यादि स्मृति-पुराणादिमें बहुत दृष्टान्त मिलते हैं करके यह सब है प्रेमका लक्षण ॥

द्वेषादयस्तु नैवम् ॥ ४५ ॥

(परन्तु) द्वेष वगैरह भावोंमें वैसा नहीं हो सकता ॥

तद्वाक्यशेषात् प्रादुर्भावेष्वपि सा ॥ ४६ ॥

अनंतर उनके कथनमें भी यह स्पष्ट मिलता है (गी० ७/२३) । उनके प्रादुर्भावमें भी "भक्ति" कही गई है ॥

'मेरे भक्त—मुझे ही लाभ करते हैं, या मेरे पास ही आते हैं ।' उनके प्रादुर्भाव या अवतरनमें भी श्रद्धा-भक्ति होनी चाहिए (गी० ११/६) ॥

जन्मकर्मविदश्चाजन्मशब्दात् ॥ ४७ ॥

(श्रीभगवानके) जन्म-कर्म जाननेवालेका जन्म नहीं होता—ऐसी शास्त्रोक्ति है करके ॥

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः (गी०४/६) ॥

मेरे दिव्य जन्म-कर्मके बारेमें जो तत्त्वतः जानते हैं, वे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

फिर जन्मते नहीं हैं, मुझे ही प्राप्त होते हैं, या मेरे पास ही आ जाते हैं !"

तच्च दिव्यं स्वशक्तिमात्रोद्भवात् ॥ ४८ ॥

जन्म-कर्म दिव्य है, क्योंकि—अपनी शक्तिसे ही समुत्पन्न होते हैं ॥

सामान्य जीवकी तरह श्रीभगवानका जन्मकर्म नहीं हुआ करता है, इसलिए दिव्य शब्दका प्रयोग किया जाता है। उनका अवतरण या आविर्भाव, उनकी अपनी माया--शक्तिसे ही हुआ करता है, और धर्मसंस्थापना तथा दुष्टदलनके लिए आप स्वेच्छया देह धारण किया करते हैं (गी० ४/६-९) ॥

मुख्यं तस्य कारुण्यम् ॥ ४९ ॥

इसमें तो मुख्य बात है उनकी करुणा ॥

यह जन्मादिका मुख्य कारण और कुछ नहीं, उनकी अपार करुणा ही है--ऐसा महर्षि शांडिल्य कहते हैं, "नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप"—आदि उक्तियाँ भी मिलती हैं ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्राणित्वान्न विभूतिषु ॥ ५० ॥

उनकी विभूतियोंमें (भक्ति करनेकी) नहीं, कारण सो तो प्राणी हैं ॥

मुक्तिदायिनी भक्ति तो एक परमेश्वरकी ही हो सकती, उनकी विभूतियोंमें भक्ति नहीं हो सकती, कारण सो विनश्वर प्रकाशमात्र है । राजा या पिपलमें भक्ति कुछ मुक्ति-दायिनी नहीं होगी। वे सब उनकी ही विभूतियाँ हैं--ऐसा जानकर श्रद्धान्वित रहना चाहिये और अधिक उनकी (ईश्वरकी) ही भक्ति करनी चाहिये (गीता--१० अ०) ॥

द्यूतराजसेवयोः प्रतिषेधाच्च ॥ ५१ ॥

द्यूत-क्रीड़ा और राजसेवा मना है करके ॥

गीतामें दोनोंको "विभूति" बताया है, परन्तु धर्म नीतिशास्त्रमें निषेध किया गया है। प्रभुमय जीवनके लिए दोनों ही अयोग्य है ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भारतनिधि, कलौनी
वाराणसी-5

वासुदेवेहपीति चेन्नाकारमात्रत्वात् ॥ ५२ ॥

वासुदेवमें भी--(विभूति होनेपर उनकी भक्ति नहीं हो सकती--ऐसा कहो तो) सो नहीं, कारण वे तो (परमेश्वरका) स्वरूप ही हैं ॥

अर्थात्--मनुष्यका आकार मात्र ही है, परन्तु वे तो स्वयं परमेश्वरका ही विग्रह हैं। सच्चिदानन्द विग्रह कहा है भक्तिशास्त्रमें ॥

प्रत्यभिज्ञाना च्च ॥ ५३ ॥

इस विषयमें वारंवार निर्देश तथा प्रत्यक्षानुभव जन्य उक्तियाँ है करके भी (उनकी भक्ति हो सकती है) ॥

श्रीमद्भागवत, महाभारत, गीता तथा अनेक पुराण-ग्रंथादिमें श्रीवासुदेव कृष्णको स्वयं ईश्वर बताया गया है,—श्रीकृष्णस्तु भगवान् स्वयं—ऐसा कहा है करके भी उनकी भक्ति हो सकती है ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वृष्णिषु श्रैष्ठयेनतत् ॥ ५४ ॥

वृष्णि वंशमें स्वयं श्रेष्ठ है—ऐसी उक्तिसे अपनेमें श्रेष्ठत्व प्रतिपादन करनेके कारण स्वयं भी विभूतिमें गिने जायेंगे ?—ऐसा नहीं। कारण—'सर्व जगतको एकांशमें धारण करता हूँ,'—'परमात्मा रूप मैं हूँ'—इत्यादि स्पष्ट उक्तियाँ उसका निषेध करती हैं।

"वृष्णिनां वासुदेवोहस्मि"—यह उक्ति तो कुल-बंधुओंमें श्रेष्ठत्व प्रतिपादनार्थ की गई है—अर्थात् कुलकी श्रेष्ठ विभूति है, जैसाकि पांडवोंमें है अर्जुन जो "मैं ही हूँ" ऐसा भी अर्थ किया जाता है॥

एवं प्रसिद्धेषु च ॥ ५५ ॥

इसप्रकार सर्व प्रसिद्ध वस्तुओंका उल्लेख कर बताये हैं (गी० १० अ०)॥ कोई कोई इसका ऐसा भी अर्थ करते हैं:—रामादि प्रसिद्ध अवतारोंमें भी जो सिद्धियाँ पाई जाती हैं, सो तो केवल विभूतियोंकी मर्यादा-बढ़ाई के लिए, न कि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उनकी अपनी कुछ प्रतिष्ठा बढ़ानेके लिए बताई गई है—और कोई इसका इसप्रकार भी अर्थ करते हैं:—श्रीकृष्णवत् अन्य सर्व प्रसिद्ध अवतारोंकी भी भक्ति करनी चाहिये।

इति अध्याय—२॥ आन्हिक—१॥

अध्याय दो

आन्हिक—२

—०—

भक्त्या भजनोपसंहाराद्गौण्या परायै तद्धेतुत्वात्॥ ५६॥

भजनमें उपसंहार होनेसे यह भक्ति गौणी है—

पराभक्तिका यह हेतु या कारण है करके भी (यह गौणी है)॥

भजनसेवामें इस भक्तिका उपसंहार होनेसे यह गौणी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भक्ति है, और इसलिए भी गौणी है कि इसे पराभक्तिका हेतु कहा गया है ॥

रागार्थप्रकीर्तिसाहचर्याच्चेतरेषाम् ॥ ५७ ॥

अनुरागके वास्ते ही प्रकीर्तिके साथ—अन्यान्य को भी कहा गया है ॥

प्रकीर्ति याने श्रद्धाके साथ यशोगान—नामकीर्तन, सेवा-पूजा वगैरहका उल्लेख होनेसे, वे भी सब भगवदनुरागके हेतु हैं। नवधा भक्तिमें यह बात स्पष्ट बता दी गई है:—श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्। अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥ पराभक्ति लाभ करनेमें ये सब ही सहायरूप हैं ॥

अन्तराले तु शेषाः स्युरुपास्यादौ च कांडत्वात् ॥ ५८ ॥

उपासना वगैरह (गौणीभक्ति) के अन्दरमें (अन्तरालमें) है—पराभक्ति, कारण वे सर्व कांडान्तर्गत हैं ॥

कर्म, उपासना, ज्ञान—ये तीनों उपासना कांडके ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्तर्भुक्त हैं। साक्षात् स्वरूप ज्ञान होनेके पश्चात् ही पराभक्ति होती है॥

ताभ्यः पावित्र्यमुपक्रमात् ॥ ५९ ॥

पवित्रतासे लेकरके (उपक्रम करके) वे सर्व लभ्य हैं॥

भक्तिपथमें सर्व प्रथम चाहिये—पवित्रता : कायिक, वाचिक तथा मानसिक शुचिता॥

तासु प्रधानयोगात् फलाधिक्यमेके ॥ ६० ॥

कोई कोई कहते हैं कि—उनके साथ प्रधान (ज्ञान) युक्त होनेसे अधिक फल होता है॥

ज्ञानपूर्वक पवित्रता अधिक फल देती है॥

कोई तो इसका अर्थ ऐसा भी करते हैं,—गौणी भक्तिके साथ (तासु) पराभक्ति (प्रधान) योग होनेसे अधिक फल मिलता है॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नाम्नेति जैमिनिः संभवात् ॥ ६१ ॥

नान-स्मरन (संकीर्तन-जपादि) द्वारा (पराभक्ति) हुआ करती है,—कहते हैं जैमिनि ॥

अत्रांगप्रयोगाणां यथाकालसंभवो गृहादिवत् ॥ ६२ ॥

यहाँ पर सर्व साधनांगोके प्रयोग—जब जैसा संभव हो (करनेका निर्देश ही दिया गया है), जैसे गृहादि निर्माण कार्यमें (सर्वांगिक संस्थापनाकी आवश्यकता रहती है, वैसे ही) ॥

ईश्वरतुष्टेरेकोऽपि बली ॥ ६३ ॥

ईश्वरकी तुष्टि होने पर कोई एक भी (एकः अपि) बलवान है ॥

नवधा भक्तिमेंसे कोई एक भी (अंग) पराभक्ति लाभ करानेमें समर्थ होता है अगर ईश्वरकी कृपादृष्टि हो तो ॥

अबन्धोऽर्पणस्य मुखम् ॥ ६४ ॥

(कर्मफलमें) अनासक्ति (अबन्धः) समर्पणका मुख या द्वार है ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर्मफलमें अनासक्ति बन्धनमुक्त करती है, और जिसका चित्त सर्व बन्धसे मुक्त है वही सर्वार्पण योग याने ईश्वरमें स्वार्पण ठीक ठीक कर सकता है, अर्थात् आत्म-निवेदन करनेमें समर्थ होता है ॥

ध्याननियमस्तु दृष्टसौकर्यात् ॥ ६५ ॥

ध्यानका नियम है दृष्टके सफल अनुभावके लिए ॥ चित्तकी स्थिरता जिस प्रकारसे सुसाध्य होवे वैसा ही चिन्तन करनेका विधान है—ध्यानाभ्यासमें । जिस रूप या भावमें मानसिक प्रीति सहज प्रतीति होवे, अन्तरमें प्रसन्नता लावे,—कष्ट-कल्पित न होवे, सो ही उत्तम अवलंबन है ध्यानका ।

सुगमताके लिए हृत्पुंडरीकमें साकार ध्यानका विधान है, और निराकार ध्यान करते हैं—मस्तक या सहस्रारमें ॥

तद्यजिः पूजायामितरेषां नैवम् ॥ ६६ ॥

यजन शब्द उन्हींकी पूजामें प्रयुक्त होता है, अन्यत्र नहीं ॥ भगवदर्चनामें ही यजन शब्दका प्रयोग किया जाता है ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पादोदकन्तु पाद्यमव्याप्तेः ॥ ६७ ॥

(प्रतिमादिमें निवेदित) पाद्यही पादोदक है, उसकी अन्यत्र व्याप्ति नहीं है ॥

पादप्रक्षालन करनेके लिए दिया हुआ जल ही पाद्य है, पादधौत जल ही है पादोदक, परन्तु शालग्रामादि पूजनके समय भी पाद्य दिया जाता है, सो तद्वत् भावसे ग्राह्य हुआ करता है, अन्य भावसे नहीं ॥

स्वयमार्पितं ग्राह्यमविशेषात् ॥ ६८ ॥

स्वयं अर्पण की हुई वस्तु भी ग्रहण की जा सकती है, (अन्यके द्वारा अर्पण की गई वस्तुसे सो) भिन्न या विशेष न होनेसे ॥ निवेदित वस्तु सब समान ग्राह्य है—अपनी दी हुई हो या पराई हो उसमें फर्क़ नहीं पड़ता, अतः प्रसादरूपसे स्वीकार्य है ॥

निमित्तगुणाव्यपेक्षणादपराधेषु व्यवस्था ॥ ६९ ॥

निमित्त, गुण और अव्यपेक्षण हेतु या अनुसार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपराधकी व्यवस्था हुआ करती है ॥

कोई निमित्तवशात् दोष या अपराध, स्वभाव-दोषजन्य अपराध और दुर्लक्ष्य होनेसे अनैच्छिक संघटित दोष या अपराध—ये तीन प्रकारके सेवापराध हैं, इसमें गुरु-लघुकी व्यवस्था निर्देश है ॥

शास्त्रमें निषेध किया हुआ द्रव्य निवेदन करना ही निमित्त-अपराध है ऐसा कोई कहते हैं। पूजामें अनुष्ठानिक व्यतिक्रम सो गुणापराध और शौचादि नियमोंके प्रति दुर्लक्ष्य करके पूजादि अनुष्ठान करना—ये सब अपराधमें गण्य हैं ॥

(वराह पुराणमें बत्तीश (३२) अपराधोंका वर्णन है) ॥

पत्रादेर्दानमन्यथा ही वैशिष्ट्यम् ॥ ७० ॥

पत्र, पुष्पादि द्रव्यका दान (सर्वत्र समान माना गया है) । तद्भिन्नमें विशिष्टता आवेगी ॥

पूजोपकरणकी भिन्नता अनुसार या मूल्यानुसार श्रद्धा-भक्तिकी कमी-जास्ती या परिमाप नहीं किया जाता है,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्तर्भावनाकी विशेषता पर ही सो निर्भरित है, ऐसा माना जाता है ॥ पत्र-पुष्प-फल-जल-ये सब सामान्य वस्तु प्रेमपूर्वक अर्पण करनेसे विशेष फल मिलता है, परमेश्वर सानन्द सब स्वीकारते हैं (गीता-९/२६) ॥

सुकृतजत्वात् परहेतुभावाच्च क्रियासु श्रेयस्यः ॥ ७१ ॥

सुकृतिसे उत्पन्न हुआ करके और परा (पर) भक्तिका कारणरूप होनेसे कर्मोंमें यह श्रेय संपादक है ।

नवधा भक्तिमें निर्दिष्ट कर्म पराभक्ति संपादन करनेमें समर्थ होनेसे वह अन्यान्य यज्ञ, दान, तपादि कर्मापेक्षा श्रेष्ठ है । सर्व तीर्थमें स्नान या परिभ्रमनसे भी भगवद् कथा श्रवण जैसे श्रेष्ठ है ॥

गौणं त्रैविध्यमितरेण स्तुत्यर्थत्वात् साहचर्यम् ॥ ७२ ॥

त्रिविध (आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी) भक्त गौण है, अन्य (ज्ञानी) के साथ साहचर्य याने एक साथ उल्लेख केवल स्तुतिके लिए है ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ज्ञानी श्रेष्ठ भक्त है तथा समधिक प्रिय है। तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते। प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः॥ (गी० ७/१७) परन्तु भक्तिका उदय हो जानेसे कालांतरमें उक्त तीनों भी पराभक्तिके अधिकारी हो सकते हैं॥

बहिरन्तरस्थमुभयमवेष्टिसववत् ॥ ७३ ॥

यज्ञके अवेष्टि तथा सव जैसे अंगोके मुवाफिक (स्मरन-कीर्तनादि) वहिरंग—अन्तरंगमें गिने जाते हैं॥

राजसूय यज्ञमें—अवेष्टि और वाजपेय यज्ञमें वृहस्पति सव * जिसप्रकार अन्तरंग-वहिरंगरूपसे गृहित है, वैसे ही श्रवण, मनन, कीर्तनादि भक्ति साधनके अंग हैं॥

स्मृतिकीर्त्योः कथादेश्चार्त्तौ प्रायश्चित्तभावात् ॥ ७४ ॥

स्मरन-कीर्तन-कथादि आर्त (इत्यादि भक्तिके अंगरूप हैं कारण) उसमें प्रायश्चित्तका भाव है॥

---

* अवेष्टिः=पापक्षालनार्थ यज्ञांग विशेष॥
सवः=सोमरस का निकालना वगैरह॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भगवत-कथा श्रवण, नामस्मरन, कीर्तनादि तीन प्रकार (आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी) भक्तिके अंग—पापादि क्षय करनेके लिए भी अनुष्ठान किया जाता है, इसलिए उसमें प्रायश्चित्तका भाव है, कहा गया ॥ पाठांतरमें—"प्रायश्चित्ता-भावात्"—है, इसका अर्थ ऐसा किया जाता है : ज्ञानीके लिए जिसप्रकार ज्ञान ही प्रायश्चित्तका कार्य करता है—अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः । सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि ॥ (गीता ४/३६), वैसे ही भक्ति भी सर्वपाप दूर करती है, अन्य प्रायश्चित्तका अभाव है इसमें, अर्थात् अनावश्यक है : स्मरन-कीर्तन ही यथेष्ट माना गया है ॥

भूयसामननुष्ठितिरिति चेदाप्रयाणमुप-
संहारान् महत्स्वपि ॥ ७५ ॥

बहुत कुछ किये विना ही रह जाते हैं, ऐसा कहो तो (आप्रयाणम्) आमरण तक भगवन्नाम स्मरन-कीर्तनादि महान पापोंका भी (उपसंहार) शेष—क्षय करता है ॥

भगवन्नाम स्मरन-कीर्तनसे ही महान पापोंका प्रायश्चित्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हो जाता है, अन्य कुछ अनुष्ठान न करनेसे भी चलता है, फिर आजीवन नाम-कीर्तनरूप भक्ति करनेवाले अन्य यज्ञादिका अनुष्ठान न भी करें तो क्या ?—अर्थात्, अनावश्यक है ॥

लघ्वपि भक्ताधिकारे महत् क्षेपकमपरसर्वहानात् ॥ ७६ ॥

सामान्य (लघु) होनेपर भी भक्तोंके लिए तो महापातक विनाशक है, कारण अन्य अनुष्ठानों की हानि या निषेध हुआ करता है।

अल्प आयास साध्य होनेपर भी भक्तके हाथ तो यह महान् है, कारण इसी नामस्मरन-कीर्तनादिसे ही महापापोंका विनाश या क्षय हुआ करता है, और अन्य कोई कर्तव्यका अवशेष नहीं रहता। "मैं तुझे सर्व पापोंसे मुक्त करूँगा, तु फिक्र मत कर (गीता १८/६६)"—यह भगवदूक्ति इसके लिए पूरी है ॥

तत् स्थानत्वादनन्यधर्मः खलेवालीवत् ॥ ७७ ॥

खलेवाली (पशु बांधनेके लिए खलामें गढ़ा हुआ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

खूँटा) जैसे (यूप-काष्ठके) स्थान पर होनेसे अनन्य धर्मवाला है ॥

यज्ञस्थलमें, यूपकाष्ठ जैसे—खलेवाली याने पशु बांधनेके लिए खूँटा, जो खलामें गढ़ा हुआ होता है,—एक ही काममें आता है अर्थात समान अर्थ सारता है, वैसे ही भगवन्नाम स्मरणादि भी यज्ञादिका कार्य सारता है ॥

आनिन्द्ययोन्यधिक्रियते पारंपर्यात् सामान्यवत् ॥ ७८ ॥

आनिन्द्य योनि—किरात, हूण, चांडालादि निम्न श्रेणी या जातिके लोगोंको भी (इस भक्तिसाधनामें) अधिकार है, औरोंके जैसा ही; इसकी परम्परा दृष्ट है करके भी ।

कोई ऐसा भी अर्थ करते हैं—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, इन्द्रिय-निग्रह, शौचादि धर्म सर्वके लिए मान्य सामान्य-धर्म है, इसमें ऊँची या नीची योनिका विचार नहीं किया जाता है, ऐसे ही भगवद्-भक्तिमें सर्व वर्णका समान अधिकार है, पशुओंका भी (द० गजराज) अधिकार है, पुराणोंमें दृष्टान्त पाये जाते हैं ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वैदिक यागयज्ञादि अनुष्ठानोंमें वर्णविचार तथा अधिकारका प्रश्न है, परन्तु भक्तिके साधनों—नामजप, कीर्तनादिमें मनुष्य मात्रका समान अधिकार है। न जात, न पात है रे प्रभुके दरबारमें, सभीके स्थान है रे—प्रभुके दरबारमें॥

अतो ह्यविपक्वभावानामपि तल्लोके ॥ ७९ ॥

इसी कारण—परिपक्व भाव न होनेपर भी (ऐसी भक्तिमें स्थित साधकको) उनके (भगवानके) लोकमें ही स्थान है॥

क्रमैकगत्युपपत्तेस्तु ॥ ८० ॥

क्रम-मुक्तिकी बात है करके भी।

ऋषि वामदेव क्रम-मुक्ति याने क्रमान्वये उन्नततर जीवन लाभ करते हुए अन्तमें ब्रह्मात्मानुभूति या साक्षात्कारके बाद मोक्ष लाभ होता है, ऐसा लिख गये हैं॥

साधन-भक्तिके बाद पराभक्ति लाभ—इसप्रकार क्रमसे भागवतीय जीवनकी गति भी स्वीकार्य है॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उत्क्रान्ति स्मृतिवाक्यशेषाच्च ॥ ८१ ॥

स्मृति (गीतादिमें) उत्क्रान्ति (वैसी भक्तिसे मुक्ति) की बात है करके भी ॥

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।....प्रति-जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ई. (गी० ९/३०-३१) तथा गी०॥८/१३॥ में साधन भक्तिवालेकी भी मुक्ति सुनिश्चित बताई गई है ॥

महापातकिनान्त्वार्त्तौ ॥ ८२ ॥

महापातकिओंके लिए आर्त भक्तिमें अधिकार है ॥

आन्तरिक पश्चात्ताप होनेसे सर्वपापसे मुक्त होकर भक्तिके द्वारा इष्टलाभ हुआ करता है । सुदुराचार होनेपर भी सत्—साधु हो जाता है, पश्चात्तापरूपी अग्निसे तपायमान होकर शुद्ध हो जाता है ॥

सैकान्तभावो गीतार्थप्रत्यभिज्ञानात् ॥ ८३ ॥

भक्ति—एकान्तभावको कहा जाता है, गीतार्थका ज्ञान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होनेसे (यह मालुम होता है) ॥

मन्मना भव मद्भक्तः (९/३४) तमेव शरणं गच्छ (१८/६२) अनन्याश्चितयन्तो माम् (९/२२)-गीतामें इत्यादि श्लोकमें से यह मालुम होता है कि—भक्तिका अर्थ 'एकान्तभाव' है ॥

परां कृत्वैव सर्वेषां तथा ह्याह ॥ ८४ ॥

पराभक्तिके प्रति लक्ष्य करके ही वैसा सब कुछ (गीतामें) कहा है ॥

"भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयम् ॥ (गी० १८/६८)—इत्यादि उक्ति, तथा—"अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ।" (१८/६६) इत्यादि आश्वासनके द्वारा श्री भगवानने कर्म, ज्ञान, उपासना वगैरहकी अन्तिम समाप्ति पराभक्तिमें की है ॥ ८४ ॥

इति अध्याय—२ ॥ अन्हिक—२ ॥

———

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अध्याय तीन

आन्हिक—१

—०—

भजनीयेनाद्वितीयमिदं कृत्स्नस्य तत्स्वरूपत्वात् ॥ ८५ ॥

भजनीयसे यह (अद्वितीय) अभिन्न है, क्योंकि यह सारा (दृश्य) उन्हींका स्वरूप है ॥

एक अद्वितीय ब्रह्म-चैतन्य सर्वमें व्याप्त है, सब कुछकी उत्पत्ति उसीमेंसे है, और स्थिति-लय भी उसीमें होते हैं,—इसलिए ये सर्व दृश्य भजनीय सत्स्वरूप परमेश्वरसे भिन्न नहीं हैं, क्योंकि उन्हींके स्वरूप हैं ॥

तच्छक्तिर्माया जड़सामान्यात् ॥ ८६ ॥

जिसे सामान्यतः जड़ कहते हैं, सो उनकी शक्तिमाया है ॥

यह सर्व दृश्यमान जड़जगत् मायिक सृष्टि है, और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राघवी-4

यह माया है उनकी शक्ति। शक्ति तथा शक्तिमान अभेद होनेसे— परमेश्वर या ब्रह्मसे यह माया-शक्ति अभिन्न है ॥

व्यापकत्वाद् व्याप्यानाम् ॥ ८७ ॥

व्यापक होनेसे व्याप्य (जो जगत् सो भी सत्य है)॥

व्यापक–धर्मान्वित परम तत्व सत्य होनेसे व्याप्यजगत् भी सत्य ही होगा, मिथ्या नहीं हो सकता। कनक कुंडलवत्, नामरूप बाद देनेसे स्वर्ण ही रहता है, और नामरूपकी कल्पित सत्ता भी तो स्वर्णमें ही अभिन्न रूपेन प्रतिष्ठित है। अर्थात्— स्वर्णत्व किसी कालमें कदापि नष्ट नहीं हुआ। आकृतिसे कुछ स्वर्णत्वकी विकृति या विकार नहीं होता है ॥

न प्राणिबुद्धिभ्योऽसंभवात् ॥ ८८ ॥

प्राणि–बुद्धिके द्वारा (यह जगत्–कल्पना की गई है कहो तो), सो ठीक नहीं, कारण सो असंभव है ॥

निर्मायोच्चावचं श्रूतीश्च निर्मिमीतेपितृवत् ॥ ८९ ॥

छोटे–बड़े सब सृष्टि करके पितृवत् (कल्याणके मार्ग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बतानेके लिए उन्होंने) वेद भी प्रकाश किये हैं ॥

मिश्रोपदेशान्नेति चेन्न स्वल्पत्वात् ॥ ९० ॥

मिश्र उपदेश होनेसे (यह ईश्वरादेश) नहीं है, ऐसा कहो तो, सो ठीक नहीं, कारण यह (प्रकाश) स्वल्प ही है ॥

वेद अनंत है, जो ग्रंथाकारमें प्राप्त है सो स्वल्प मात्र है। इसमें मिश्र उपदेश—क्रिया-कांड तथा ज्ञान-कांड दोनों होनेसे और स्वेच्छानुसार ग्रहणीय—आचरणीय होनेसे यह ईश्वरादेश नहीं है, मनुष्य प्रणीत है, ऐसा मत सोचो ॥

फलमस्माद्बादरायणो दृष्टत्वात् ॥ ९१ ॥

इनके (हाथसे ही) फल मिलता है, यह वादरायणने कहा है—वैसा (वेदमें) देखा है करके ॥

कर्मोंका फल देते हैं ईश्वर स्वयं, ऐसा महर्षि वादरायणने दर्शन किया है अर्थात् कहते हैं सयुक्तिक, वेदमें जो निर्दिष्ट है ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्युत्क्रमादप्ययस्तथाहि दृष्टम् ॥ ९२ ॥

इसकी उत्पत्ति अनंतर लय (अप्ययः) उस वेदके अनुसार (हुआ करता है), ऐसा देखा जाता है ॥

कोई ऐसा भी अर्थ करते हैं : "व्युत्क्रमात्" अनंतर विलोमकी रीतिसे "अप्ययः"—लय हुआ करता है, ऐसा पाया जाता है ॥

अनुलोम क्रमसे सृष्टि हुआ करती है, प्रकृति, महत् तत्व, आकाश, वायु, तेज, जल, क्षिति, इसीका विलोम क्रमसे लय हुआ करता है : क्षिति, जल, तेज, वायु, आकाश, महत् अव्यक्त-प्रकृति, अनंतर ब्रह्ममें जाकर स्थिर होती है ॥

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति । यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति ॥ तद् ब्रह्मेति ॥ (तैत्तिरीय उप०) ॥

इति अध्याय—३ ॥ आन्हिक -१ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अध्याय तीन

आन्हिक-२

—०—

तदैक्यं नानात्वैकत्वमुपाधियोगहानादादित्यवत् ॥ ९३ ॥

एकत्वमें नानात्व (नाम-रूपादि) उपाधि-योगसे दृष्ट हुआ करता है, उपाधि नष्ट होनेसे फिर एकत्वका प्रकाश हुआ करता है आदित्यवत् ॥

वेदमें अद्वय ब्रह्म स्वरूपका उपदेश है, फिर नाना रूप कैसे ? उपाधियोगसे : नाम-रूपकी उपाधि । यह नाम-रूप हटा लिया जाय तो फिर मूल अद्वय रूपका पूर्ववत् प्रकाश होगा। अनेक जलबिन्दुमें जैसे एक ही सूर्यके अनेक प्रतिबिंब, जलबिंदु नष्ट होनेपर यथावत् एक अद्वितीय सूर्य प्रकाशित रहता है ।

अथवा,—सवितृमंडलवर्ति पुरुषका ध्यान करनेकी विधि वेदमें है, तो इससे मंडल ओ पुरुष भिन्न हुआ, मंडलरूप उपाधिसे अलग होनेसे पुरुष स्वयमेव एक अद्वय ही रहते हैं, अतः एक ही है ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पृथगिति चेन्न परेणसंबन्धात् प्रकाशानाम् ॥ ६४ ॥

(पुरुष या ब्रह्मसे जीवादि) पृथक या भिन्न है, अगर ऐसा कहो तो, सो ठीक नहीं, कारण पर अर्थात् परमपुरुष (या परब्रह्म) के साथ सर्व प्रकाशका संबन्ध है (मूल स्वरूप-में) ॥

तस्य भासा सर्वमिदं विभाति (कठ० ३०) उन्हींके प्रकाशसे ये सर्व प्रकाशयुक्त हैं, कोई पदार्थ स्वतंत्र प्रकाशवाला नहीं है। अतः संपूर्ण पृथक अस्तित्व जीवका हो नहीं सकता; जो कुछ पृथग्पणाकी प्रतीति हुआ करती है, सो अविद्या जन्य है। सच्चिद्रूपमें एकता सदैव वर्तमान रहती है ॥

न विकारिणस्तु कारणविकारात् ॥ ६५ ॥

मूलकारण भी विकारयुक्त हो जायगा, इसलिए यह सब विकारी (सत्ता) से समुत्पन्न है, ऐसा नहीं (कह सकते)॥

निर्विकार ब्रह्म-चैतन्य विकार दोषयुक्त हो जायगा अगर ऐसा माना जाय कि—यह सृष्टि उन्हींका विकार है। यह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिदृश्यमान जगद्विकार संपूर्ण मायिक लीला है। आकाशमें स्थित पदार्थ जैसे आकाशको विकारग्रस्त नहीं कर सकता, स्वरूपतः अस्पृश्य ही रहता है, तद्वत् मायिक सृष्टि मूल स्वरूपमें कुछ भी विकार उत्पन्न नहीं कर सकती, सदा निर्विकार तथा शुद्ध ही रहता है॥ (जो कुछ विकार दृष्टिगोचर होता है, सो करण इन्द्रियजन्य है, कोई ऐसा अर्थ करते हैं॥)

अनन्यभक्त्या तद्बुद्धिर्बुद्धिलयादत्यन्तम् ॥ ९६ ॥

अनन्य भक्तिके द्वारा बुद्धिका संपूर्ण लय होनेसे (अत्यन्तम् बुद्धिलयात्), तन्मयी बुद्धि (तद् बुद्धिः) हुआ करती है॥

बुद्धि भी लीन हो जाती है भक्तिभावका अत्यन्त आवेग आनेपर---भगवद्स्वरूपमें, फिर कोई भिन्नता रहती नहीं है, अनन्य भक्तिका यह है अन्तिम फल॥

एकांत भक्तिके द्वारा अनात्म-बुद्धिका लय होनेसे ब्रह्म-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संस्पर्शरूप अत्यंत सुखकी प्राप्ति होती है—ऐसा भी अर्थ किया जाता है ॥

आयुश्चिरमितरेषां तु हानिरनास्पदत्वात् ॥ ९७ ॥

दीर्घायुः होनेपर भी अन्य सब कर्मोंका नाश होता है, कारण आस्पदत्वका अभाव होता है ॥

भक्तकी आयुः दीर्घ होनेपर भी सर्वकर्म भगवद्प्रीत्यर्थ करनेसे या फलत्याग पूर्वक करनेसे उसका भोग नहीं होता है,—कर्मों का फल विनष्ट हो जाता है, उसका मालिक भक्त न होने से—कर्मफलका भोक्ता वह रहता नहीं।

छान्दोग्य श्रूतिमें भी यही है—तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्षेऽथ संपत्स्य इति (६/१४/२), जबतक उसकी मुक्ति नहीं होती, उसका आयुः भोग हुआ करता है, बादमें विदेहमुक्त हो जाता है ॥

संसृतिरेषामभक्तिः स्यात् नाज्ञानात्
कारणासिद्धेः ॥ ९८ ॥

संसारमें बारंबार जन्म अभक्तिके कारण ही हुआ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करता है, अज्ञानके कारण नहीं; अज्ञानकी उत्पत्तिका कारण असिद्ध होनेसे ॥

अज्ञानजन्यका होता है संसारमें आवागमन यह बात ऋषिवरको मान्य नहीं है। आप कहते हैं कि—अज्ञानकी उत्पत्तिका कारण जब बताया नहीं जा सकता और उसका अस्तित्व केवल मायिक होनेसे, वह बारंबार जन्मादिका कारण नहीं हो सकता : परमेश्वरमें अभक्ति ही जन्मादिका कारण है। भक्तो मुक्त हो जाता है, पर अभक्त संसारमें आवागमन करता रहता है। मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरिन्त ते (गी० ७/१४)

त्रीण्येषां नेत्राणि शब्दलिंगाक्षिभेदाद्रुद्रवत् ॥ ९९ ॥

जिसप्रकार रुद्र त्रिनेत्रयुक्त हैं, वैसे जीवके भी शब्द, लिंग और अक्षि (प्रत्यक्ष) भेदसे तीन चक्षु हैं ॥

जीवको परमतत्व जाननेके लिए रुद्र जैसा त्रिनेत्र होना पड़ता है : वेदादि शास्त्र (शब्द प्रमाण - आगम) की धारणा, लिंग याने अनुमान-प्रमान और अक्षि याने प्रत्यक्ष प्रमानके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सहारेसे परमतत्वका निश्चय करना पड़ता है ॥

आविस्तिरोभावा विकाराः स्युः क्रियाफल-
संयोगात् ॥ १०० ॥

आविर्भाव तथा तिरोभाव तो विकार ही है, उसमें कर्मफलका संयोग होनेसे ॥

परमेश्वर निर्विकार हैं, कर्मोंका भोक्ता नहीं है, इसलिए जन्ममरण रूप विकारसे रहित है। जीवको स्वकर्मोंका फल भोग हुआ करता है, इसलिए जन्ममरण रूप विकारग्रस्त है। जबतक पराभक्ति लाभ करके प्रभु परमेश्वरका दर्शन नहीं कर पाता, इस जन्म-मृत्युके चक्रसे मुक्ति नहीं होती है। प्रेमभावसे परमेशके साथ एकरूपताका अनुभव ही मुक्ति देता है। जैसे ज्ञानी ब्रह्म-आत्मामें ऐक्य अनुभव—ब्रह्म-विज्ञान द्वारा करके, मोक्ष प्राप्त हुआ करते हैं, वैसे भक्त भी पराभक्तिसे परम प्रेमस्वरूप श्रीभगवानके स्वरूपमें लीन होकर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संसृति बन्धनसे विमुक्त हो जाते हैं ॥ ॐ ॥

इति अध्याय—३ ॥ आन्हिक-२ ॥

इति श्रीशांडिल्य कृत भक्तिसूत्रका

सरल भावानुवाद समाप्त ॥

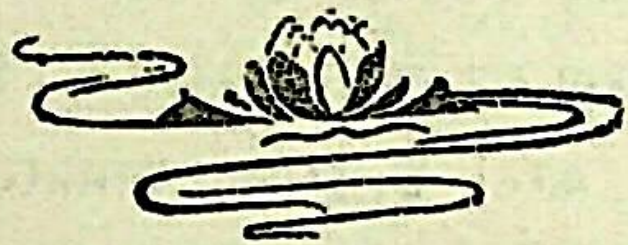

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वामी जपानन्दजी कृत
हमारे अन्य प्रकाशन

१.	श्रीरामकृष्ण परमहंस (संक्षिप्त जीवनी व उपदेश)	मूल्य ।=)
२.	माताजी (श्री सारदामणि देवी)	,, ।=)
३.	आचार्य स्वामी विवेकानन्द	,, १)
४.	भक्ति-तत्त्व	,, १॥)
५.	ज्ञान-दीपिका (पाठ्य पुस्तक)	,, ।=)
६.	मननीय उक्तियाँ	,, =)
७.	खुद हकीम	,, ।)

आगामी प्रकाशन

१. कठोपनिषद् व्याख्या, २. गीता-बोध, ३. संन्यासी प्रवर स्वामी तुरीयानंद, ४. संस्कृति-समीक्षा, ५. केनोपनिषद् व्याख्या, ६. मांडूक्योपनिषद् व्याख्या, ७, मानवका अदृष्ट आदि रूप ८. आश्वासन।

स्वजन स्नेहियोंकी स्मृतिमें हमारे प्रकाशन विभागकी कोई भी पुस्तक अगर कोई सज्जन प्रचारार्थ छपवानेमें मदद करना चाहें तो हम साभार स्वीकार करेंगे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसके प्रकाशन-व्यय में बहिन थनकम्म पी. (प्राध्यापिका—सुदर्शन कॉलेज) ने सहयोग दिया है। हम उन्हें हार्दिक धन्यवाद देते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi